IJAER/ June-July 2012 /Volume-1/Issue-1/Article No-16/ 102-106 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में व्यक्त धार्मिक एव सांस्कृतिक मूल्य

डॉ0आशुतोष मिश्र
शोध निर्देषक
हिन्दी विभाग
सी0एम0जे0विष्वविद्यालय
राय–भोई, जोरबाट, मेघालय

कॅवर पाल सिंह दौलत
शोधार्थी
हिन्दी विभाग
सी0एम0जे0विष्वविद्यालय
राय–भोई, जोरबाट, मेघालय

महिला की सदा से ही अपनी एक अलग सत्ता, पहचान एवं महत्ता रही है। स्त्री केवल एक हॉड–मॉस का पिण्ड नहीं है बल्कि आदि काल से वर्तमान काल तक के विकास के पथ पर पुरूष का साथ देकर उसकी जीवन एवं कर्म यात्रा को सरल बनाने, उसके सभी अभिषापों एव तिरस्कार को झेलकर और अपने वरदानों से जीवन में अक्षयषील मानवी ने जिस व्यक्ति चेतना और हृदय का विकास किया है उसी का एक पर्याय स्त्री का रूप हैं। स्त्री न केवल एक मॉ है वरन् वह एक ऐसी शक्ति है जिसे भगवान के रूप में धरती पर पूजा जाता है वह शक्ति का प्रतिरूप है एक मूरत है जो पृथ्वी पर निवास करने वाले प्रत्येक जीव को एक स्नेह, ममता, दया और संवेदना प्रदान करती है। इसी कारण स्त्री इस समाज का एक सबसे महत्वपूर्ण अंग है।

मानव अपने को खोकर भी जिसे न खोना चाहे, न खो सके, वह मूल्य हैं यह सत्ता का बहुमूल्य पक्ष ही नहीं संस्कार और विकास भी है। इसी से मानव जीवन सार्थक होता है। भारतीय परम्परा का प्रभाव जीवन मूल्यों पर स्पष्टतः झलकता है। परम्पराएं समाज की उपज हैं, ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती हैं इसलिए ये परम्पराएं जीवन मूल्यों को प्रमाणित करती रहती ह। समान संस्कारों वाले मनुष्यों के समूह को ही सामान्य तथा जाति या समाज कहा जाता है। अतएव समाज की प्रकृति या स्वभाव और अवस्था या विश्वमत की प्रेरक भावनाओं में प्रायः समान संस्कार रहते हैं। इसी आधार पर जातीय संस्कारों तथा किसी देश या समाज में विभिन्न जीवन व्यापारों, सामाजिक सम्बन्धों और मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले तत्त्वों की समष्टि को संस्कृति कहा गया है। "संस्कृकृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।" यह वह प्रक्रिया है जिससे किसी देश के सर्वसाधारण का व्यक्तित्त्व निष्पन्न होता है ओर लोगों को एक अभिनव दृष्टिकोण मिलता है, "जिन्दगी का यह एक तरीका है।" इस तरह संस्कृति एक दृष्टि भी है और प्रक्रियात्मक विकास भी। मूल्य से इसका अविनाभावी सम्बन्ध है क्योंकि यह मानव–जीवन की परिणति से जुड़ी है। इस प्रकार मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाओं और जाति–विशेष के आंतरिक भावों की अभिव्यंजना को संस्कृति कह सकते हैं। 'राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर' ने संस्कृति के सम्बन्ध में अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है कि "असल में संस्कृकृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है। जिसमें हम जन्म लेते हैं।"

संस्कृति एक ऐसी प्रवाहमान धारा है जो समाज के आदर्शों मान्यताओं एवं मूल्यों को अपने में समाहित करती हुई युगानुरूप परिवर्तनों में मुड़ती हुई अबाधगति से प्रवाहित रहती है। संस्कृति में जीवन दृष्टि एवं जीवन मूल्यों की उदास्तता का स्तर निर्धारित हो जायेगा। प्रत्येक समाज अपनी प्रकृति परम्परा इतिहास भूगोल एवं अनुभव के आधार पर कुछ जीवन–मूल्यों का अंगीकार करता है। जीवन मूल्य जितने उच्च होंगे संस्कृति उतनी जीवनदायिनी होगी। जीवन मूल्यों की उच्चता का अर्थ तत्त्वसंबंधी देश के मनुष्यों के आचार–व्यवहार चिन्तन–मनन, रीति–रिवाज, हाव–भाव की प्रबुद्धता और विशालता है।

धर्म समाज, नैतिकता, आशा, आस्था और जीवन के अन्य सभी पहलुओं से इसका प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध है। नई परिस्थितियाँ जब व्यक्तित्त्व को इष्ट दिशा में जब पूर्णरूप से मोड़ देती हैं, अपने तकाजों की पूर्ति के लिए आवश्यक कार्यों की शक्ति जब व्यक्तित्व में पैदा कर देती हैं, यानी उस परिस्थिति के लिए आवश्यक गुणों का जन्म और विकास जब व्यक्तित्त्व में हो जाता है– तब वे मूल्य साकार हो उठते हैं, मूल्यों को जन्म देने वाली ये परिस्थितियाँ अपनी सर्वाजनिकता में ऐतिहासिक होती है। अतः ये मूल्य भी ऐतिहासिक हो जाते हैं, और संस्कृति भी। यह संसार मानव–मात्र का नाटक घर है विविध पात्रों का वेष धारण कर नट, नृत्य करते हुए चले जाते हैं, पुनः वेषान्तर को धारण कर नृत्य करते हैं, चले जाते हैं। उसी प्रकार कृमि–कीट, सरीसङ्ग, पतंग आदि योनियों में नाचते रहने से जन्म का साफल्य क्या हुआ? पुण्य विशेष मानव–शरीर में जीव ने प्रवेश किया पुनः उस शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में घुसता रहेगा किंतु

जन्म का साफल्य कब प्राप्त होगा? इसका अंत भगवत शरणागति में ही है। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में विभिन्न संस्कारों की अभिव्यक्ति हुई है। इसके साथ–साथ सांस्कृतिक पक्ष की अभिव्यक्ति करने वाले अन्य उपादान जैसे– रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा, पर्वोत्सवों आदि का भी वैदिक वाङ्मय में सफल निर्वाह हुआ है।

धार्मिक जीवन मूल्य

भारतीय समाज धर्म प्रधान समाज है। सभी शास्त्रों में धर्म पालन की आवश्यकता पर विशेष रूप से बल दिया गया है और पूजा, यज्ञ तथा तप आदि का आचरण करते हुए व्यक्ति के लिए यह निश्चित किया है कि वह अपना मन स्वार्थ से हटाए और धीरे–धीरे परमार्थ की ओर ले जाए, जिससे मोक्ष की प्राप्ति हो। धर्म ने वैदिक काल से ही भारतीय समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है और उसे संगठित रखने में विशिष्ट योगदान दिया है। भारतीय शास्त्रों में प्रत्येक वर्ण और अवस्था के कर्त्तव्यों–अकर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है जिससे सामूहिकता की भावना को बल मिला और भारतीय समाज अधिक संगठित रूप में सामने आया।

वैदिक वाङ्मय में वैदिक धर्म की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होती है जिसमें उपासना, यज्ञ और कर्मकाण्ड आदि का प्राधान्य हैं जिसका अनुसरण करने वाले का कभी पतन नहीं होता–

नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन्,
मनो यो अस्य घोरमाविवासात्।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि,
क्षयत् स राय ऋतपा ऋतेजाः।।(ऋग्वेद, 7/20/6)

अर्थात् जो उस परमात्मा के भयंकर मन को यज्ञों से प्रसन्न करने में सफल हो जाता है वह व्यक्ति कभी पतित नहीं होता है और न हानि उठाता है। जो परमात्मा (इन्द्र) की प्रार्थना करता है, वह सत्यवादी और सत्यप्रिय व्यक्ति ऐश्वर्य में निवास करता है। वेदों में व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए आचार–संहिता दी हुई है, जो सबका मार्गदर्शन करती है। जो इसका पालन करते हैं वे जीवन में सदा सफल होते हैं, उन्नत होते हैं और सुखमय जीवन व्यतीत करत हैं। मनुस्मृति में कहा गया है कि वेदों में धर्म का सार है। वेदों में सबके कर्त्तव्यों का उल्लेख है। जो वैदिक शिक्षा के अनुसार काम करता है, वह इस लोक में कीर्ति पाता है और मृत्यु के बाद दिव्य सुख'। मनुस्मृति–(2/7,2/9)

धर्म का व्यवहार क्षेत्र समाज है क्योंकि वहीं से इसका अंकुरण और विकास होता है परंतु समाज के निर्माण में जन–समुदाय भी एक महत्त्वपूर्ण कारक है।आधुनिक काल में हम देखते हैं कि इस प्राचीन भारतीय जीवन–मूल्य विषयक धारणाओं के साथ–साथ पाश्चात्य जीवन मूल्य विषयक धारणाओं का भी अत्यधिक प्रभाव पडा है जिस कारण आधुनिक भारतीय जीवन–मूल्य विषयक धारणाओं का एक अलग विस्तृत चर्चा का विषय बन जाता है।

संक्षेप में, वैदिक–कालीन 'ऋत' की जो धारणा थी वह भले ही आज पृष्ठभूमि में चली गई हो किन्तु हम ऐसा नहीं कह सकते कि इस संसार में 'ऋतु' का लोप हो गया है। अज्ञात रूप से ही सही वह आज भी विद्यमान है और सृष्टि का ऋत चक्र चलता जा रहा है– सुगम, सरल तथा व्यवस्थित रूप से।

सोबती जी ने अपने साहित्य में जीवन मूल्यों की दोनों स्थितियों का चित्रण किया है। एक ओर हमारे भारतीय संस्कारों से जुड़े जीवन मूल्य हैं जो इस वर्तमान आधुनिक युग में तीव्रता से परिवर्तित हो रहे हैं परन्तु उसे रोक देने का कार्य भी साहित्यकारों के जरिए होता है। समाज को स्थायित्त्व देने वाले मूल्यों को सुरक्षित रखने का प्रयास जिन घटकों द्वारा किया जाता है उन्हें चुनकर कथातत्त्व बीज के रूप में साहित्य में लाने का कार्य साहित्यकार करता है।

मानव जीवन और सामाजिक संबंधों को संयमित करने के लिए जो नियम निर्धारित किये गये हैं, वे सब धर्म के अंतर्गत आते हैं। धर्म, मानव को नैतिक रूप में आगे बढ़ाने को प्रेरित करता है। सभी धर्म अपने– अपने ढंग से मनुष्य को, मनुष्य बनाने का प्रयत्न करते हैं। प्रायः प्रत्येक धर्म का आचरण पक्ष एक–सा ही होता है। आध्यात्मिक पक्ष के साधन भले ही कुछ भिन्नता रखते हो, हर धर्म मानवता का समर्थक होता है। धर्म प्रायः किसी समुदाय, जाति या वर्ग से प्रतिबद्ध होता है। हर एक के जीवन–निर्वहण के कुछ सिद्धांत होते है, वही धर्म के रूप में सामने आते हैं।

धर्म शब्द **'धृ धारण पोषणयोः'** धातु से बना है, जिसका अर्थ है धारण और पोषणकरना, अर्थात् पदार्थ के धारक और पोषक तत्त्व को धर्म कहते हैं। जिसका अभिप्रायहै, जिन तत्त्वों पदार्थों का अस्तित्त्व बना है, वही तत्त्व उस पदार्थ का धर्म है'।

'बृहत्, हिन्दी कोश' के अनुसार धर्म का तात्पर्य है– 'ऋषि, मुनि या आचार्य द्वारानिर्दिष्ट वह कृत्य, जिससे पारलौकिक सुख प्राप्त हो, अभ्युदय और निः श्रयस का साधनभूतवेदविहित कर्म (जैसे –यज्ञ), एक प्राकर का अदृष्ट, जिससे स्वर्ग की प्राप्ति होती है।'

ई.बी. टायलर धर्म को, आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास मानते है।
स्वामी विवेकानंद धर्म को परिभाषित करते हुए कहते हैं– 'धर्म वह वस्तु है, जो पशुत्वसे मनुष्यत्व तक और मनुष्यत्व से देवत्व तक उठा देती है।'
डॉ0 राधाकृष्णन धर्म को वह मानदंड मानते है, 'जो विश्व को धारण करता है, किसीभी वस्तु का वह मूल तत्त्व, जिसके कारण वह वस्तु वही है'।
डा0 सियाराम सक्सेना 'प्रवर' धर्म को परिभाषित करते हुए कहते हैं– 'अधिभूत,अध्यात्म और अधिदेव तत्त्वों के एकत्र समाहार का नाम ही धर्म है।'

धर्म को व्याख्यायित करते हुए भीखनलाल आत्रेय कहते हैं–'धर्म उन नैतिकनियमों को कहते हैं, जिनके पालन से व्यक्ति और समाज, दोनों की उन्नति और कल्याणहोते हों। जिन पर चलने से व्यक्ति को सुख, शांति और समाज में संतुलन, सामंजस्य और शांति स्थापित हो।'

धर्म के लौकिक और पारलौकिक, दो रूप हैं। लौकिक धर्म के अतंर्गत सत्य,ईमानदारी, अहिंसा आदि हैं, जो सांसारिक जीवन को संतुलित करते हैं। पारलौकिकधर्म में ईश्वर की प्राप्ति, मोक्ष आदि समाहित हैं। प्रार्थना और उपासना, यज्ञ, दान, तप,आदि के द्वारा पारलौकिक धर्म का निर्वहण किया जाता है। धर्म के चौदह लक्षण हैं–अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, क्षमा, धृति, दम, घी, विद्या, अक्रोध, दया, दान आदि।

डॉ0 रामनारायण व्यास धर्म की उपयोगिता बताते हुए कहते हैं– 'धर्म सार्वलौकिकहोता है, वह व्यक्ति के दृष्टिकोण को विराट बनाता है तथा प्रेम एवं सौहार्द्र के माध्यमसे संसार के समस्त प्राणियों में एकता के भाव भरने का भावनात्मक प्रयास करता है।'

दर्शन और धर्म के कुछ तत्त्व समान हैं, जैसे ईश्वर, जीव, जगत्, माया विवेचनआदि। धर्म में भी जब हम परोक्ष सत्ता या आध्यात्मिक पक्ष पर विचार करते हैं तो इनपक्षों का विश्लेषण किया जाता है। वैसे दर्शन, ज्ञान पक्ष को विशेष रूप से लेकर चलताहै और धर्म, आचरण के पक्ष को। मोक्ष की बात दोनों ही करते हैं, लेकिन दर्शन कासैद्धांतिक पक्ष अत्यधिक चिन्तनपरक है। व्यावहारिक या साधनात्मक पक्ष, लगभग दोनोंसमान है। धर्म आचरण पक्ष पर अधिक बल देता है और दर्शन आध्यात्मिक पक्ष पर।मानव–मूल्य से समाविष्ट दोनों ही हैं।

प्राचीन काल से ही धर्म और ईश्वर को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। धर्म और ईश्वरके प्रति आस्था–अनास्था भावनाओं पर आधारित होती थी। धर्म का संबंध मानवीय आचरणसे रहा है, जो मानव–मात्र का कल्याण कर सके। वर्तमान समय में विज्ञान के उदयसे मानव का विश्वास उस परंपरागत धर्म और धार्मिक मूल्यों से उठ गया है जो कभीउसके जीवन का केन्द्र थे। विज्ञान के प्रभाव से मानव धर्म को तर्क और बौद्धिकता कीकसौटी पर कसता है। वर्तमान युग में धार्मिक स्थलों पर बढ़ती अनैतिकता अधार्मिकता,ब्राह्यडम्बरप्रियता, एवं अत्याचार के कारण भी लोगों का धार्मिक मूल्या से विश्वास उठताजा रहा है। मार्क्सवादी और फ्रायडीय विचारधारा के अनुसार कोई भी व्यक्ति धर्म औरईश्वर के प्रति आस्था रखने के लिए बाध्य नहीं हैं। धार्मिक मूल्य कहीं तो अपने उसीपरंपरागत संस्कारों और अंधविश्वासपूर्ण भावना के रूप में उभरे, कहीं विज्ञान, वर्तमानशिक्षा से प्रभावित होकर मानव– मूल्यों के रूप में उभरे। आज की युवा पीढ़ी पर परंपरागतरूढ़ धार्मिक मूल्यों के प्रति नकारात्मक विद्रोही दृष्टिकोण रखती है। उन रूढ़ मूल्यों सेजुड़े लोग उनके उत्साह को समाप्त करने की कोषिष करते हैं। अंततः कह सकते हैंकि किसी भो समुदाय के धर्म, ईश्वर से संबंधित मूल्य (पूजा–अर्चना, भक्ति–भाव,पूजा–स्थल) धार्मिक–मूल्य कहलाते हैं।

सांस्कृतिक जीवन मूल्य

समाज में रहते हुए प्रत्येक को सामाजिक नियमों से अवगत होना पड़ता है तथाउन्हीं के अनुकूल कृत संकल्प लेना पड़ता है। अतः संस्कृति वैयक्तिक उपलब्धि है जिसमेंअन्याय जीवजातियों की साझेदारी या अंतर्भाव असंभव है। परिणामतः संस्कृति रहित मानवसमाज एक असंभव कल्पना है। मानव समाज में उसका अस्तित्त्व असीम है। उसके अंतर्गतपरस्पर व्यवहार आते हैं। इस विस्तृत सार्वभौमत्त्व के परिणामस्वरूप संस्कृति शब्द केअभिप्राय में कठिनाई होकर उसका अर्थद्योतन विवादास्पद बन गया है फिर भी समाजके वास्तविक स्वरूप के आधार पर संस्कृति शब्द के अर्थ के अन्वेषण का प्रयास करेंगे।

संस्कृति 'संस्कृत' भाषा का शब्द है। 'सम' उपसर्ग के साथ 'कृ' (डुञ्) धातु केसंयोग से यह शब्द बना है जिसका मूल अर्थ 'साफ या परिष्कृत' करना है।"तथा एकअन्य व्युत्पत्ति भी संस्कृत व्याकरण में मिलती है। 'सम्' पूर्वक 'कृ' धातु से क्तिन् प्रत्ययजुड़कर यह शब्द बना है, जिसका अर्थ "परंपरागत अनुसंयुक्त संस्कार"।अतः मनुष्यका जीवन परंपरागत मूल्यों के रूप में संस्कारित है।

संस्कृति के पर्यायी शब्दशुद्धता, सफाई, सुधार, संस्कार।''संस्कृति के लिए अंग्रेजी पर्यायी शब्द है'कल्चर' जिसकी व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'कैल्टर्स' से बतायी जाती है जो 'कृषि' काअर्थ ध्वनित करता है। यह शब्द संस्कृति के अर्थ को

सही रूप में वहन् करने में कुछअसमर्थ–सा लगता है फिर भी पर्यायी शब्द के रूप उपयोग में लाया जाता है। 'सामाजिकप्रथा', 'कस्टम का पर्याय' हलायुध कोश में संस्कार से संस्कृति को जोड़ा गया है जो'सम' पूर्वक 'कृ' धातु के साथ 'अण्' प्रत्यय लगकर 'सम्यक् संस्कार' को व्यक्त करता है।

संस्कृति और सभ्यता के अर्थ को लेकर पाश्चात्य विद्वान टायलर ने गुस्टाफ ब्लेम(1802 – 1967) द्वारा "पहली बार प्रयुक्त संस्कृति शब्द के अभिप्रायों को गठित कर आजसमाज के सामाजिक विज्ञानों को एक नयी संकल्पना दी है। उन्होंने अपनी पुस्तक मेंकहीं संस्कृति कहीं सभ्यता और कहीं संस्कृति, सभ्यता दोनों का प्रयोग किया है।''

संस्कृति मनुष्य के आन्तरिक और बाहरी संवेदनाओं को एक संयोजिनी आकार प्रदानकरके उसके लिए ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करती है जिससे मानव का सर्वांगिक विकास होसके। संसार में अनेक ऐसी संस्कृतियां भी पायी जाती हैं जो समय के अनुसार ही अपनागौरव रख पाती हैं। उनके बाद धीरे–धीरे लुप्त हो जाती हैं। इतिहास पर दृष्टिपात करनेसे ज्ञात होगा कि सम्पूर्ण संसार में संस्कृति के अनेक रूप और गुण हैं जो तुलनात्मकदृष्टि से एक–दूसरे से समानता रखते हैं। यदि गहन दृष्टि डाली जाए तो हिन्दु संस्कृति,मुसलमान संस्कृति, पूर्व की संस्कृति, पश्चिम की संस्कृति आदि अलग–अलग शब्द हैंपरन्तु इन सबके कुछ मौलिक लक्षण है जो संस्कृतियों में समान रूप से विद्यमान हैं। ये लक्षण इस प्रकार हैं –

1. संस्कृति एक सामाजिक प्रक्रिया है।
2. संस्कृति का प्रवाह निरन्तर तथा अनावरूद्ध है।
3. संस्कृति का स्वरूप आदर्श होता है।
4. संस्कृति में अनुकूलन की क्षमता होती है।
5. संस्कृति व्यवहारिक होती है।
6. संस्कृति से मानव की आध्यात्मिक तथा भौतिक प्रवृत्ति का समन्वय होता है।
7. संस्कृति द्वारा अनेकता में एकता की स्थापना होती है।

संस्कृति मानव के भूत, वर्तमान तथा भावी जीवन की सर्वापूर्ण अवस्था है। यहजीवित रहने का ढंग है। जन्म से लेकर मृत्यु तक तथा उसके भी उपरान्त जन्म जन्मान्तरतक संस्कृति समस्त मानव चेतना को व्याप्त किए हुए है।व्यक्ति के आचरण, चिन्तन, क्रियाशीलता, ज्ञात, अध्यात्म एवं कल्पना में संस्कृतिका ही रूप स्थित है। संस्कृति मानव जीवन के आन्तरिक तथा बाह्य रूप को समान रू‍प से व्याप्त किए हुए है। यह मानव जीवन की एक परम आवश्यकता है। इसमें मानव जीवनके सभी सर्वश्रेष्ठ गुण समाहित हैं।जीवन का प्रत्येक पहलू संस्कृति के अन्दर समाहित है। इससे बाहर जीवन रूपीअंग के तत्त्व नहीं है। संस्कृति के वशीभूत होकर मानव उन क्रियाओं को करता है। जिनकेद्वारा उनका भविष्य निर्धारित होता है। संस्कृति ऐसी विराट शक्ति है जिसकी रचना औरविकास में अनेक पीढ़ी के अनुभवों का योगदान है। संस्कृति के रूपों का उत्तराधिकारसाथ–साथ चलता है। धर्म, दर्शन, कला, और साहित्य आदि उसी के अंग हैं। भारतमें अनेक सम्प्रदायों के विकास के कारण भारतीय संस्कृति समष्टिमूलक है। जाति–भेद,वर्णभेद एवं संकुचित विचारों और घृणास्पद भावनाओं को मिलाकर एक नवीन और सभ्यराष्ट्र की उत्पत्ति करना भारतीय चेतना की विशेषता रही है। यह सम्पूर्ण इतिहास, भूतऔर वर्तमान के साथ सांमजस्य रखती है। भारतीय संस्कृति की निम्न विशेषताएं भी होसकती है–

1 – लोकमंगल की भावना
2 – विविधता में एकता
3 – आध्यात्मिकता
4 – सदाचार की भावना
5 – प्रेम एवं सहयोग की भावना।

राष्ट्र के जीवन में प्राण डालने के लिए वहाँ की संस्कृति का अध्ययन होना अत्यन्तआवश्यक है। इतिहास इसके लिए स्तम्भ के समान माना जाता है। अतीत रूपी प्रेम कासमायोजन सांस्कृतिक चेतना का ही आन्तरिक केन्द्र बिन्दु माना जाता है। सच्चे अर्थोंमें अतीत का प्रेम सांस्कृतिक पुनर्जागरण का ही परिणाम होता है। इतिहास का विवेचनकरना राष्ट्रीयता को जगाना है। जागरण की प्रवृत्ति का द्योतक होता है। इतिहासविवेचन तो राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण अंग है– पुनर्जागरण काल की विशिष्ट प्रवृत्तिहै। वर्तमान की समसमस्याओं के समाधान के लिए हमें पहले की युग सीमाओं मेंजाना पड़ता है। इसके लिए हमें भविष्यकल्पी बनना पड़ता है। आज का जीवनमात्र आज तक सीमित न होकर विस्तृत बनकर भविष्य के लिए भी बन जाता है।हमारे पूर्वजों ने जो हमारे लिए जिया है उसमें आत्मसात करना भी आवश्यक होसकता है। राष्ट्र एक व्यक्तित्त्व है तो उसे भूत, वर्तमान और भविष्य को लेकर एकईकाई में जीना है। हमारी राष्ट्रीय संस्कृति वही हो सकती है जो धर्म, साहित्य,कला, काव्य, वास्तु कला तथा कारीगरी में सन्निहित हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ० प्रषांत वेदालंकर : धर्म का स्वरूप विकास प्रकाषन, कानपुर पृ०स०ं–17
2. सं. कालिका प्रसाद : बृहत् हिन्दी कोष– पृ०सं०– 552
3. ई.बी. टायलर : प्रीमिट कल्चर– पृ०सं०– 424
4. स्वामी विवेकानंद : सूक्तियाँ एवं सुभाि"ात– पृ०सं०– 21
5. डॉ० राधाकृश्णन : धर्म और समाज– पृ०सं०–123
6. डॉ० सियाराम सक्सेना च्रवर' : धर्म की मूल अवधारणा, पृ०सं०– 25
7. कृष्णा सोबती – जिन्दगीनामा – राजकमल प्रकाषन, प्रथम संस्करण 2004
8. कृष्णा सोबती – समय सरगम – राजकमल प्रकाषन, प्रथम संस्करण 2008
9. कृष्णा सोबती – ऐ लड़की – राजकमल प्रकाषन, प्रथम संस्करण 2008